क़ौमी एकता के अलंबरदार 'पत्रकार प्रेमचंद'

अहमद रजा

प्रेमचंद के साहित्य और उनके वैचारिक लेखन को पढ़कर ये आसानी से समझा जा सकता है कि प्रेमचंद ब्रिटिश मुक्त भारत के साथ ही शोषण मुक्त भारत की कल्पना कर रहे थे। प्रेमचंद की लेखनी का मुख्य उद्देश्य भारतीय जीवन का पुनरुद्धार करना था। सदियों की गुलामी में जी रही भारतीय जनता में देश प्रेम और जागरुकता की भावना को पैदा करना और जनमत को स्वाधीनता हेतु संगठित करना उनकी जीवन का मुख्य लक्ष्य था। प्रेमचंद ने अपने जीवन के इस महान लक्ष्य को अपनी साहित्यिक रचनाओंवैचारिक लेखोसाक्षात्कारों, भाषणों और विभिन्न पत्रों (चिट्ठियों) में मुख्य रूप से उजागर किया है। प्रेमचंद देश और देश की पीड़ित जनता के प्रवक्ता थे जो किसी भी कीमत पर हक़ बात कहने से पीछे नहीं हटते थे। प्रेमचंद ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से दो वर्गों को संबोधित करते हुए अपने विचारों को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है-

1. पहला शोषक वर्ग थाजिसमें अंग्रेज और उनका साथ देने वाले भारतीय पूंजीपति और जमींदार वर्ग शामिल थे।
2. दूसरा शोषित और पीड़ित वर्ग का थाजिसमें देश के गरीब मजदूर-किसान वर्ग शामिल थे।

प्रेमचंद की लेखनी इन्हीं दो वर्गों की समाजिक,आर्थिक और राजनीतिक इत्यादि परिस्थितियों को लेकर चल रही थी। प्रथम वर्ग के शोषकों को जड़ से उखाड़ फेंकना और दूसरे वर्ग के शोषितों का उद्धार करना, यही उनकी पत्रकारिता और साहित्य की मुख्य विशेषता कही जा सकती है। प्रथम वर्ग में शामिल भारतीय शोषकों को प्रेमचंद जहां एक तरफ अपनी आलोचना का विषय बनाते हैं वहीं दूसरी ओर उन्हें (अंग्रेजों की षड्यंत्रकारी नीति के फलस्वरूप) मोहरा बनाया जाने से अवगत कराकर जनमत निर्माण में सहायक बनने की वकालत भी करते हैं। प्रेमचंद भारतीय शोषक वर्ग को भी देशोद्धार के लिए संगठित करना चाहते थे। प्रेमचंद युगीन राजनीति के सूत्रधार गांधी जी और उनके सहयोगी भी इन्हीं दो मूलभूत सिद्धांतों के साथ स्वाधीनता के लिए जान और माल की कुर्बानी देकर जनमत को संगठित कर रहे थे। अतः राजनीति के क्षेत्र से जो कार्य गांधी जी और उनके सहयोगी अहिंसक आंदोलनों के माध्यम से कर रहे थे वही कार्य पत्रकारिता के क्षेत्र से प्रेमचंद अपनी कलम के माध्यम से कर रहे थे।

सांप्रदायिकता मध्यकालीन भारत की नहीं बल्कि आधुनिक ब्रिटिश भारत की उपज है। संप्रदायिकता का संबंध किसी धर्म विशेष से नहीं होता बल्कि यह मुट्ठी भर लोगों के स्वार्थ से संचालित होती है। कहने का अर्थ यह है कि सांप्रदायिकता स्वार्थ के गर्भ से पैदा होती है और धर्म का लिबास पहनकर ईर्ष्या ,हिंसा और विद्वेष का वातावरण तैयार करती है। जब यही सांप्रदायिक मनोवृत्ति राजनीति और सत्ताधारी नेताओं का रूप धारण कर लेती है तभी सांप्रदायिक राजनीति जन्म लेती है। सांप्रदायिक मनोवृत्ति से संचालित व्यक्ति की यह मानसिकता होती है की सब कुछ अपने लिए ,दूसरों के लिए कुछ भी नहीं। जब किसी भी देश की राजनीति साम्प्रदायिकता को शासन का आधार बना लेती है तो ऐसा देश आपसी द्वेष, हिंसा और नफरतों का घर बन जाता है। स्वंतत्रता पूर्व देश की राजनीतिक स्थिति बिल्कुल ऐसी ही थी। देश में उस समय तीन शक्तियों द्वारा सांप्रदायिकता की आग को फैलाने का कार्य किया जा रहा था। वह तीन साम्प्रदायिक शक्तियां निम्नलिखित थी–

1. मुस्लिम लीग
2. हिंदू महासभा
3. अंग्रेज अर्थात् ब्रिटिश सरकार

देश की स्वाधीनता के लिए भारतीय जनता का संगठित होना अत्यंत आवश्यक हो चुका था। आए दिन हो रहे सांप्रदायिक दंगों के कारण देश की जनता स्वराज्य प्राप्ति के मार्ग से विचलित हो रही थी। आवश्यकता दोनों धर्मो (हिंदू–मुस्लिम) के अनुयायियों में समन्वय की भावना को पैदा करने की थी। प्रेमचंद अपने विभिन्न लेखों में जहां एक ओर हिंदू-मुस्लिम एकता की महत्ता,उसकी उपयोगिता को प्रस्तुत करके देश की बिखरी जनता को संगठित कर रहे थेवहीं दूसरी ओर हिंद-मुस्लिम एकता को खण्डित करने वाले विभिन्न सांप्रदायिक समुदायों का ऐतिहासिक प्रमाणों के माध्यम से खण्डन भी कर रहे थे। प्रेमचंद ने देश में पनप रही सांप्रदायिकता की आग को बुझाने और हिन्दू-मुस्लिम एकता को स्थापित करने के लिये लगभग सैकड़ों लेख एवं संपादकीय लिखे थे। उन लेखों के नाम इस प्रकार हैं– 'मनुष्यता का अकाल'(ज़माना, फरवरी 1924), 'कर्बला' (माधुरी, 1 जनवरी 1924 ई०) ,'उर्दू में फिरऔनियत' (ज़माना, दिसंबर 1930 ई०), 'नवयुग' (हंस, मार्च 1931 ई०) 'स्वर्थांधता की पराकाष्ठा'(हंस, अप्रैल 1931 ई०) 'हिंदू–मुस्लिम एकता'(हंस, नवंबर 1931 ई०),'सांप्रदायिक मताधिकार की घोषणा, (जागरण, अगस्त 1931 ई०),'अब हमें क्या करना है'(जागरण, 29 अगस्त 1932 ई०),हिंदू

सभा की निष्क्रियता (जागरण, 5 अक्टूबर 1933 ई०), मौलाना शौकत अली की गहरी सूझ (जागरण, 5 अक्तूबर 1932 ई०) 'मुस्लिम–सर्वदल– सम्मेलन' (जागरण, 19 अक्टूबर 1932 ई०) ,'एकता सम्मेलन ' (जागरण, 31 अक्टूबर 1932 ई०) ,'आशा का केंद्र '(जागरण, 7 अक्टूबर 1932 ई०), 'एकता के विरुद्ध संप्रदायवादियों का शोर गुल '(जागरण, 28 नवंबर 1932 ई०), 'एकता' (जागरण, 28 नवंबर 1932 ई०) ,'समझौता या हार '(जागरण, 5 दिसंबर1932 ई०) ,'मुस्लिम जनता में एकता सम्मेलन का समर्थन'(जागरण, 12 दिसंबर 1932 ई०) ,'पंजाब के हिंदू मुसलमानों में समझौता '(जागरण, 8 मई 1932 ई०) ,'कानपुर–दंगा–रिपोर्ट' (जागरण, 14 मई 1932), 'हज़रत मुहम्मद की पुण्य स्मृति '(जागरण, 17 जुलाई 1933 ई०) ,'कुरआन में धार्मिक एक्य का तत्व '(11 सितंबर 1933 ई०) ,'सांप्रदायिक समस्या का राष्ट्रीय समन्वय '(जागरण, 18 दिसंबर 1933 ई०) ,'मुस्लिम छात्रों से '(जागरण, 22 जनवरी 1934 ई०) ,'सांप्रदायिकता और स्वार्थ '(जागरण, 19 फरवरी 1934 ई०) ,'सांप्रदायिक बंटवारा ' (जागरण, 21 मई 1934 ई०) इत्यादि। इसके अतरिक्त उनकी विभिन्न कहानियों जैसे –'हिंसा परमो धर्मः' (दिसंबर 1926 ई०) ,'मंदिर' (1927), 'शुद्धि' (मई 1928 ई०) ,'इस्तीफा' (दिसंबर 1928 ई०) , 'जुलूस' (मार्च 1930), 'समर–यात्रा' (अप्रैल 1930 ई०) ,'शराब की दुकान '(मई 1930 ई०) ,'सुहाग की साड़ी '(मई 1930 ई०) ,'अनुभव' (अक्टूबर 1932 ई०)इत्यादि में भी हिंदू–मुस्लिम एकता को उजागर किया गया है। प्रेमचंद ने अपने विभिन्न लेखों एवं संपादकीयों के माध्यम से तत्कालीन समाज में प्रचलित धर्म के परंपरागत और रूढ़ीवादी स्वरूप को चित्रित करते हुये स्पष्ट कर दिया था कि धर्म का यह स्वरूप व्यक्ति और समाज की प्रगति में बाधक है। जो धर्म व्यक्ति की आत्मीयता को कुचलने वाला होजो अहिंसा और घृणा की शिक्षा देता होऐसे धर्म से किसी भी देश का कल्याण नहीं हो सकता।

अंग्रेज़ों का भारत आगमन व्यापार के माध्यम से हुआ। भारतवर्ष उनके लिये किसी दुधारु गाय से कम नहीं था। भारतीय उद्योग–धंधों के विनाश होने में अंग्रेज़ मिशनिरियों का सबसे बड़ा हाथ था। बढ़ते व्यापार के कारण अंग्रेजों को इस देश में अपना शासन स्थापित करने का रास्ता दिखाई देने लगा। किंतु देश में ब्रिटिश शासन का स्थापित होना कोई आसान कार्य नहीं था। ब्रिटिश सरकार ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए देश में साम्प्रदायिकता के वातावरण को उत्पन्न करना आवश्यक समझा। हिन्दू और मुसलमानों के बीच भेदभाव की दीवार खड़ी करने का कार्य जितनी कुशलता से दोनों धर्मों के

धर्मावलंबियों (हिंदू–मुसलमान) द्वारा नहीं किया जा सका,वह कार्य अंग्रेज शासक अपनी षडयंत्रकारी नीति से बड़ी सरलता से कर रहे थे। सर्वप्रथम अंग्रेज़ों ने यहाँ के ज़मीदारों,राय साहबों,खान साहबों को अपना मोहरा बनाया। इसके अतिरिक्त देश की सामाजिक,राजनीतिक परस्थितियों नें भी अंग्रेजों की सहायता की। भारतीय जनता द्वारा किए जा रहे विभिन्न विद्रोहों को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने यह अनुमान लगा लिया था कि देश के विभिन्न राज्यों के पास जो थोड़ी बहुत शक्ति है, उसका उपयोग या तो राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिये किया जा सकता है या फिर ब्रिटिश शासन को जड़ से उखाड़ फेंकने में किया जा सकता है। ब्रिटिश सरकार को यह खतरा बराबर बना रहता था कि यदि भारत की जनता संगठित हो गयी तो भारत में ब्रिटिश शासन का स्थापित रहना असंभव हो जाएगा। यही कारण था कि अंग्रेजों नें साम्प्रदायिकता का प्रयोग राष्ट्रीय आंदोलनों को दबाने और भारत की एकत्व शक्ति को कमजोर करने के लिये किया।

प्रेमचंद ने 26 जून 1933 ई० को 'जागरण' साप्ताहिक पत्र में प्रकाशित 'सुदिन अथवा कुदिन'नामक एक लेख में ब्रिटिश सरकार की इस दोहरी नीति का पर्दाफाश लॉर्ड रादर मियर (टाइम्स आदि विश्व विख्यात पत्रों के स्वामी (के भाषण के एक अंश के माध्यम से किया। "भारत ब्रिटिश साम्राज्य की धुरी की कील है यदि हम भारत खो देंगे,तो साम्राज्य ही डूब जाएगा। पहले उसका आर्थिक अंग डूबेगा फिर राजनैतिक। हम बिना भारत के सिंगापुर पर या मलाया राज्य पर अधिकार किये शासन न कर सकते और इन स्थानों के बिना हम आस्ट्रेलिया या न्यूजीलैंड कभी ना पाते या हम अपने लिए अत्यंत ही लाभदायक चीन में हांग-कांग की 'क्राउन कॉलोनी' के आधार पर ब्रिटिश बाजार न बना सकते"।[1] सांप्रदायिकता की आग को भड़काने के लिए ब्रिटिश सरकार ने हिंदुओं मुसलमानों और सिखों को कुछ ऐसे अधिकार दिए जिनकी नींव में ही वैमनस्य भरा हुआ था। उदाहरण के लिए 1885 से 1905 ई० तक ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की किसी भी माँग को पूरा नहीं किया लेकिन मुस्लिम लीग द्वारा 1906 ई० में पेश की गई साम्प्रदायिक माँग को सरकार ने तुरंत स्वीकार कर लिया। द्वितीय विश्व युद्ध के समय मुस्लिम सांप्रदायिकता वादियों को राजनीतिक स्तर पर सुदृढ़ करने के लिए विशेष सुविधाएं प्रदान की गयी। सांप्रदायिकता की अग्नि को कायम रखने के लिए ब्रिटिश सरकार सांप्रदायिक नेताओं,बुद्धिजीवियों और सरकारी कर्मचारियों को ऊँचे-ऊँचे पदों से विभूषित भी कर रही थी। सांप्रदायिक दंगों को रोकने के लिए ब्रिटिश सैनिक सुस्ती से काम लेती थी। राष्ट्रीय आंदोलनों को दबाने के लिए 'डंडे' का सहारा लिया

जाता था किंतु सांप्रदायिक तनाव को बढ़ने दिया जाता था। ब्रिटिश शासन की षडयंत्रकारी नीति के कारण देश का अस्तित्व लगभग मिट चुका था। ब्रिटिश सरकार इस बात को समझ रही थी कि हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य से ही ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित रह सकता है। मुरादाबाद के कमांडेंट लेफ्टिनेंट कर्नल कोक नें एक अवसर पर घोषणा की थी,"हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि हम पूरी ताकत के साथ विभिन्न धर्मों एवं जातियों के बीच मौजूदा भेदभाव को बना रहने दें। हमें यह भेदभाव समाप्त करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। 'फूट डालो और राज करो 'ही भारतीय सरकार का सिद्धांत होना चाहिए"।[2]

अंग्रेज शासक जॉन स्टूअर्ट मिल की पुस्तक "हिस्ट्री ऑफ इंडिया" का प्रचार इसी उद्देश्य से कर रहे थे। इस पुस्तक में भारत को सांप्रदायिक दृष्टि से दिखाया गया है और भारतीय इतिहास को प्राचीन हिंदू काल, मध्यवर्ती मुस्लिम काल और आधुनिक ब्रिटिश काल के रूप में विभाजित किया गया है। बड़ी होशियारी दिखाते हुए आधुनिक काल को पूर्व के अध्यायों की तर्ज पर इसाई काल नहीं कहा गया। इलियट और डॉसन नें इस क्रम को और आगे बढ़ाते हुए भारत के इतिहास के सांप्रदायिक दृष्टिकोण का प्रचार किया। वैसे तो इसकी शुरुआत अंग्रेज शासकों ने की थी, लेकिन धीरे-धीरे स्वार्थी नेताओं की सत्तालोलुप प्रवृत्ति ने इसे एक नए इतिहास के रूप में प्रस्तुत कर दिया। राम पुनियानी ने अपनी पुस्तक 'साम्प्रदयिक राजनीतिक : तथ्य एवं मिथक' में इस संबंध में लिखा है– "मध्ययुगीन इतिहास को विकृतिकरण करके ब्रिटिश इतिहासकारों ने चुने हुए स्रोतों का उपयोग करके केवल संघर्ष को ही उजागर किया है। मिल और मैकाले की परंपरा में इलियट और डॉसन ने भी यही कार्य किया। इलियट ने बड़ी बेबाकी के साथ स्वीकार किया है कि उसकी आठ खण्डों वाली पुस्तक 'हिस्ट्री आफ इंडिया एज़ टोल्ड बाई हर ओन हिस्टोरियंस' का मकसद लोगों को सांप्रदायिक गुटों में बांटना है।....वे अपने मकसद में कामयाब रहे क्योंकि दरबार के इतिहासकारों द्वारा दिया गया विवरण बहुत पुरानी शैली में होता था जिसमें शासक की प्रशंसा की जाती थी और उसके कार्यों को लालच नहीं बल्कि पवित्र मकसद से प्रेरित बताया जाता था। ब्रिटिश इतिहासकारों ने इसका तुरंत प्रयोग किया।"[3]

अंग्रेज सरकार देश की भोली-भाली हिंदू-मुस्लिम जनता में फूट डालने के लिए भारतीय इतिहास की सांप्रदायिक व्याख्या भी कर रही थी जिसे लक्ष्य करते हुए प्रेमचंद ने नवंबर 1931 ई० को 'हंस' में प्रकाशित 'हिंदू–मुस्लिम एकता'नामक शीर्षक में लिखा था,"विजयी जाति पराजितों पर जो सबसे कठोर

आघात करती है,वह है उनके इतिहास को विषैला बना देना। प्राचीन हमारे भविष्य का पथ प्रदर्शक हुआ करता है। प्राचीन को दूषित करके,उसमें द्वेष और भेद और कीना भरकर भविष्य को भुलाया जा सकता है। वही भारत में हो रहा है। यह बात हमारे अंदर ठूंस दी गई है कि हिंदू और मुसलमान हमेशा से दो विरोधी दलों में विभाजित रहे हैं। हालांकि ऐसा कहना सत्य का गला घोटना है।"[4]अंग्रेज़ अपने साम्राज्य को सुदृढ़ करने के लिए देश के इतिहास को सांप्रदायिक नज़रिए से व्याख्यायित कर रहे थे। आधुनिक स्कूलों के स्थापित होने से पूर्व ही साम्राज्यवादी लेखकों द्वारा इतिहास की साम्प्रदायिक व्याख्याएं की जानें लगी थी। पक्के राष्ट्रवादी लोगो पर भी इसका प्रभाव पड़ रहा था। ऐसी स्थिति में विकृत इतिहास के माध्यम से देश में एकता का सूर्य उदय नहीं हो सकता था। स्कूलों और कालेजों में पढ़ाई जाने वाली सांप्रदायिक शिक्षा प्रणाली को देखते हुए गांधी जी ने भी एक अवसर पर कहा था, "हमारे देश में साम्प्रदायिक सौहार्द तब तक स्थायी रूप से नहीं लाया जा सकताजब तक हमारे स्कूलों,कालेजों में इतिहास की पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से इतिहास की बेहद विकृत व्याख्याएं पढ़ाई जाती रहेंगी।"[5]

साम्प्रदायिक भावना अवचेतन मन में पनप रहे विचारों से निर्मित होती है। तत्कालीन साम्प्रदायिक नेता इतिहास की कुछ घटनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत कर रहे थे जिसके कारण दूसरे के प्रति मन में एक पैशाचिक छवि बन जाती थी। मुस्लिम लीग हिंदू समुदाय के विरुद्ध एक अलग छवि बना रहा था, तो दूसरी ओर हिंदू महासभा भी मुसलमानों के प्रति एक अलग पैशाचिक छवि का निर्माण कर रहा था। आज आधुनिकता के दौर में जहाँ प्रायः सभी देश चाँद पर जीवन ले जाने के लिए प्रयासरत हैं और उसके लिए देश की जनता शिक्षा के माध्यम से निरंतर सफलता प्राप्त करती हुई देखी जा रही है, वहीं आज हमारे देश में सांप्रदायिकता जैसी सड़ी गली मानसिकता को साम्प्रदायिक नेताओं द्वारा फैलाया जा रहा है। यही कारण है की आज हमारा देश अन्य देशों की तुलना में आर्थिक रूप से दिन ब दिन गिरता जा रहा है। स्वतंत्रता से पूर्व लगभग देश की यही स्थिति थी। यदि स्वार्थी नेताओं ने इतिहास की मनमानी व्याख्या करके देश को धर्म के नाम पर बांटने का कार्य न किया होता, तो देश कभी भी दो टुकड़ों में न बंटता, और न ही अंग्रेज़ो को इस देश को खोखला करने का अवसर प्राप्त हुआ होता। आज अल्पसंख्यकों के विरुद्ध पूर्वग्रहों के कारण सामाजिक वातावरण को दूषित बना दिया गया है। यह पूर्वाग्रह इतिहास की गलत व्याख्या और वर्तमान को गलत तरीके से पेश करने के कारण पैदा किया गया है। यही कारण है कि भारत में आज सांप्रदायिक समस्या एक बड़ी समस्या के रूप में उभरती हुई दिखाई दे रही है। इतिहास के

मिथकीय प्रस्तुतीकरण के कारण यह आग निरंतर तीव्र गति से फैल रही है। आज हिंदू और मुस्लिम संप्रदायों को आपस में लड़ाने के लिए इतिहास का दुरुपयोग किया जा रहा है। वास्तव में धर्म के आधार पर अपनी राजनीति चलाने वाले कुछ नेताओं ने हमारे देश के इतिहास को विषैला बनाया है। हिंदू सांप्रदायिक ताकतों नें मुस्लिम समुदाय के विरुद्ध और मुस्लिम सांप्रदायिक ताकतों ने हिंदू समुदाय के विरुद्ध इतिहास की सांप्रदायिक व्याख्या की। वैसे तो इसकी शुरुआत अंग्रेज शासकों ने की थी, लेकिन धीरे-धीरे स्वार्थी नेताओं की सत्तालोलुप प्रवृत्ति ने इसे एक नए इतिहास के रूप में प्रस्तुत कर दिया।

प्रेमचंद हिंदू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे। उन्होंने तत्कालीन समाज को संगठित करने और दो समुदायों के मध्य बढ़ रही खाई को कम करने के लिए हिंदू-मुस्लिम एकता के इतिहास को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। इतिहास के पृष्ठों में सैकड़ों ऐसी घटनाएं दबी हुई हैं जिसमें हिंदू और मुस्लिम जनता को एक दूसरे के लिए प्राण न्योछावर करते हुए दिखाया गया है। तत्कालीन सांप्रदायिक नेता और ब्रिटिश शासक अपने स्वार्थ के लिए उन घटनाओं को इतिहास के पृष्ठों में छिपाने का जो कार्य कर रहे थे,प्रेमचंद उससे भलीभांति परिचित थे। हिंदू–मुस्लिम एकता को प्रतिष्ठित करने के लिए ही उन्होंने 'कर्बला' नामक नाटक लिखा था। यह नाटक मुस्लिम धर्मगुरु हज़रत हुसैन तथा यजीद के मध्य हुई लड़ाई को लेकर लिखा गया था। इस लड़ाई में कुछ हिंदू योद्धाओं ने भी हजरत हुसैन का साथ देते हुए अपनी जानों को कुर्बान किया था। देश में अक्सर दंगे मुहर्रम पर ही हुआ करते थे। प्रेमचंद को हिंदू–मुस्लिम एकता को स्थापित करने का इससे अच्छा अवसर और नहीं मिल सकता था। देश में बढ़ रही सांप्रदायिकता की आग को बुझाने के लिए ही उन्होंने हजरत हुसैन की करुण कथा को हिंदू–मुस्लिम एकता का आधार बनाया। तत्कालीन हिंदू नेताओं और लेखकों द्वारा इस नाटक में हिंदू पात्रों के अनावश्यक समावेश को लेकर आलोचना भी की जा रही थी। तत्कालीन सांप्रदायिक नेताओं और लेखकों के आक्षेप का खण्डन करते हुए 1 जनवरी 1925 ई० को 'माधुरी' में प्रकाशित 'कर्बला'नामक एक लेख में उन्होंने लिखा– "मित्रवर श्रीयुक्त रामचंद्र टंडन ने मेरे 'कर्बला' नामी ड्रामा की आलोचना करते हुए यह शंका प्रकट की थी कि इस नाटक में हिंदू पात्र क्यों लाये गये।... यह ड्रामा ऐतिहासिक है और इतिहास से यह पता चलता है कि कर्बला के संग्राम में कुछ हिंदू योद्धाओं ने भी हजरत हुसैन का पक्ष लेकर प्राणोत्सर्ग किए थे,अतः उन पात्रों का बहिष्कार करना किसी भाँति युक्तिसंगत न होगा। हिंदू जाति यदि अपने पुरुखाओं को किसी धर्म संग्राम में आत्मोत्सर्ग करते हुए देखकर प्रसन्न न हो तोसिवाय इसकेऔर क्या कहा जा सकता है कि

हममें वीर-पूजा की भावना भी नहीं रही,जो किसी के अधःपतन का अंतिम लक्षण है। जब तक हम अर्जुन,प्रताप,शिवाजी आदि वीरों की पूजा और उनकी कीर्ति पर गर्व करते हैं तब तक हमारे पुनरुद्धार की कुछ आशा हो सकती है। जिस दिन हम इतने जाति गौरव शून्य हो जाएंगे कि अपने पूर्वजों की अमर कीर्ति पर आपत्ति करने लगे ,उस दिन हमारे लिए कोई आशा न रहेगी।...हमारा तो अनुमान है कि हिंदू इच्छा न रहने पर भी इस बात से प्रसन्न होंगे और उस पर गर्व करेंगे"।[6]

प्रेमचंद हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक इतिहास की विचारधारा का खंडन करते हुए जनता को यह दिखाने का प्रयास किया कि हिंदू-मुस्लिम की लड़ाई वास्तव में कभी हुई ही नहीं। हिंदू और मुस्लिम के मध्य जो भी लड़ाईयां हुई थीवह दो शासकों के बीच हुई थी। दोनों धर्मों की गरीब जनता का इस लड़ाई से कोई सरोकार नहीं था। प्रेमचंद नें यह बात भी जनता के सम्मुख रखी कि हिंदू-मुस्लिम लड़ाई मध्यकाल की उपज नहीं बल्कि तत्कालीन स्वार्थ की उपज है। सैकड़ों ऐसे उदाहरण इतिहास के पृष्ठों में मिल जाते हैं जिसमें हिंदू और मुसलमान भाई-भाई बनकर जीवन यापन करते हुए दिखाई देते हैं। अकबर,रसखान,अब्दुररहीम खानखाना जैसे विद्वानों द्वारा सगुण भक्तों का आदर एवं सम्मान करना इस बात का प्रमाण है कि हिंदू-मुस्लिम कभी दुश्मन नहीं रहे हैं। इसी प्रकार निर्गुण भक्तों में चाहे वह सूफी भक्त रहे हों या फिर संत भक्त रहे हों,दोनों समुदायों में हिंदू-मुस्लिम एकता को हिंदी साहित्य के पृष्ठों में देखा जा सकता है। हिंदू और मुस्लिम जनता किस प्रकार एक देश की भूमि पर आपसी भेदभाव को भूलकर और सत्तालोभियों से दूर रहकर एक साथ उठते बैठते थेउसके कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत किए जाते है...

सगुण भक्तों में न केवल हिंदू जनता दीक्षित थी बल्कि बहुत से मुसलमान भी इस ओर झुके हुए दिखाई देते हैं। अकबर ,रसखान इत्यादि मुस्लिम अनुयायियों द्वारा सगुण भक्तों का सम्मान इस बात का प्रमाण है कि हिन्दू-मुस्लिम की लड़ाई धार्मिक नहीं थी। रसखान दिल्ली के पठान सरदार थे। “ये बड़े भारी कृष्ण भक्त और गोस्वमी विट्ठलनाथ के बड़े कृपापात्र शिष्य थे। 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान 'इनकी प्रमुख कृति है।”[7]महाराज टोडरमल शेरशाह के यहाँ कुछ दिन ऊँचे पद पर थे ,पीछे अकबर के समय मे भूमिकर विभाग के मंत्री हुए।....कुछ दिनों तक बंगाल के सूबेदार भी थे। ये जाति के खत्री थे। इन्होंने शाही दफ्तरों

में “हिंदी के स्थान पर फ़ारसी का प्रचार किया जिससे हिन्दुओं का झुकाव फ़ारसी की शिक्षा की ओर हुआ।”[8] शेख मोइनुद्दीन चिश्ती महान सूफी संत थे। दोनों ही समुदायों के हजारों अनुयायी उनमें दीक्षित थे। सूफी और संत भक्तों ने धर्म का ऐसा स्वरूप प्रस्तुत किया जो सभी धर्मों के मानने वालों के लिए सरल था। उलेमा और ब्राह्मण एक दूसरे की धार्मिक विधियों एवं बाह्याडम्बरों से घृणा करते थे लेकिन सभी सूफी और संत एक दूसरे की धार्मिक प्रथाओं का सम्मान करते थे। मुस्लिम शासक औरंगजेब का भाई दाराशिकोह जो सूफी भक्त थाउसने अपनी बहुत सी पुस्तकों (सिर्रे अकबर,मजमउल बहरैन,हसनातुल आरिफीन)में हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मों की बुनियादी धार्मिक मान्यता को लेकर एक नया पंथ खड़ा कर दिया था। लेकिन तत्कालीन मुस्लिम धर्माचार्यों ने उस पर कुफ़्र का फतवा देकर दार पर चढ़वा दिया था।

महाराज बीरबल भी अकबर के मंत्रियों में से थे। “इनके और अकबर के बीच होने वाले विनोद और चुटकुले उत्तर भारत के गांव में प्रसिद्ध हैं।....इनके मरने पर अकबर ने यह सोरठा कहा था...

दीन देखि सब दीन,एक न दीन्हों दुसह दुख।
सो अब हम कहं दीन,कुछ नहिं राख्यो बीरबल।।”[9]

कहते हैं कि केशवदासजी को इन्होंने एक बार छह लाख रुपये दिये थे और “केशवदास की पैरवी से ओरक्षा नरेश पर एक करोड़ का जुर्माना मुआफ़ कर दिया था।”[10] अब्दुर्रहीम खानखाना और तुलसीदास की मित्रता से कौन हिंदी साहित्य प्रेमी अपरिचित होगा। तुलसीदास ने एक ब्राह्मण की कन्या के विवाह के लिये रहीम के पास ये दोहा लिखकर भेजा था-सुरतिय नरतीय नागतिय यह चाहत सब कोय।

रहीम ने “उस ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर उपर्युक्त पंक्ति को इस प्रकार पूरा किया था-गोद लिये हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय।”[11]

उपर्युक्त सत्य का उदघाटन करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं,“जैसा हम पहले कह चुके हैं कि हम गलत इतिहास को दिल से निकाल डालें और देश काल को भलीभांति विचार करके अपनी धारणाएं स्थिर करें। तब हम देखेंगे कि जिन्हें हम अपना शत्रु समझते थे उन्होंने वास्तव में दलितों का उद्धार किया है। हमारे जात-पांत के कठोर बंधनों को सरल किया हैऔर हमारी सभ्यता के विकास में सहायक हुए हैं। यह कोई छोटी और महत्वहीन बात नहीं है कि 1857 के विद्रोह में हिंदू–मुसलमान दोनों ही ने जिसे अपना नेता

बनाया,वह दिल्ली का शक्तिहीन बादशाह था। हिंदू मुसलमान नृपतियों में पहले भी लड़ाइयां हुई हैं,पर वह लड़ाईयां धार्मिक द्वेष के कारण नहीं,स्पर्धा के कारण थी। उसी तरह जैसे हिंदू राजे आपस में लड़ा करते हैं। उन हिंदू मुस्लिम लड़ाईयों में हिंदू सिपाही मुसलमानों की ओर होते थे और मुसलमान सिपाही हिंदुओं की ओर। (आगे इसी लेख में प्रोफेसर मोहम्मद हबीब ऑक्सन द्वारा लिखित 'मध्यकाल में हिंदू-मुस्लिम संबंध 'नामक लेख के एक अंश का उद्धरण देते हुए 'ज़माना' पत्रिका में लिखते हैं–"कहा जाता है कि हिंदुओं को घोड़े पर सवार होने,तीर चलाने और जुलूस निकालने तथा स्नान और पूजा-पाठ का निषेध था। पर यह किंवदंतियां मौलिक प्रमाणो के गलत मुताला (अध्ययन) से पैदा हुई है। उस जमाने का हिंदू मजहब संगठित और शक्तिशाली था। उसके साथ मुसलमान बादशाह इसलिए रवादारी बरतते थेकि इसके सिवा दूसरी राह न थी।...उनके लिए सांप्रदायिक संघर्ष का फल तबाही के सिवा और कुछ न होता। यह विचित्र बात है कि मध्यकालीन इतिहास के राजनीतिक या ऐतिहासिक साहित्य में हिंदू-मुस्लिम द्वंद्व का कोई छोटे से छोटा प्रमाण नहीं मिलता। लेकिन इसका कारण यह नहीं कि हिंदू इसके लिए तैयार न थे। नहीं ! वह तो अपनी रणप्रियता के लिए बदनाम थे। लेकिन उस काल की किसी लड़ाई में भी हम सेनाओं को सांप्रदायिक आधार पर लड़ते नहीं पाते। अफगानी सिपाहियों का एक दस्ता तराइन की लड़ाई में राय पिथौरा के नीचे लड़ा था। मुसलमानों की एक पैदल सेना ने पानीपत की लड़ाई में मराठों की मदद की थी। असली हिंदू-मुस्लिम लड़ाई तो वास्तव में कभी हुई ही नहीं।"[12]

उपर्युक्त हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए प्रेमचंद ने जो बातें कहीं हैं और उसके प्रमाण में उन्होंने जो इतिहास प्रस्तुत किया हैउसका महत्व किसी भी दृष्टि से कम नहीं। प्रेमचंद ने तत्कालीन समाज के सम्मुख यह बात भी रखी कि ,"यह सारी लड़ाई मुट्ठी भर शिक्षित आदमियों की है जो ओहदे और मेम्बरियों के लिये एक-दूसरे को नोंच रहे हैं।"[13]देश को संगठित करना तत्कालीन समय की सबसे बड़ी माँग थी। यह कार्य तब तक संभव नहीं हो सकता था जब तक कि देश के इतिहास को पुनः उसकी वास्तविकता के साथ न प्रस्तुत किया जाता। प्रेमचंद ने एक अन्य स्थान पर हिंदू जनता में धीरे-धीरे उभर रही प्रतिशोध की भावना को दबाने के लिए इतिहास को उसके वास्तविक और यथार्थ तथ्यों के साथ प्रस्तुत करते हुए लिखा–

"दिलों में गुबार भरा हुआ है फिर मेल कैसे हो। मैली चीज पर कोई रंग नहीं चढ़ सकता।....हम गलत इतिहास पढ़-पढ़कर एक दूसरे के प्रति तरह-तरह की गलतफहमियाँ दिल में भरे हुए हैं और उसे किसी तरह दिल से नहीं निकालना चाहते,मानों उन्हीं पर हमारे जीवन का आधार हो। यह बात हमारे अंदर ठूँस दी गई है कि हिंदू और मुसलमान हमेशा से दो विरोधी दलों में विभाजित रहे हैं,हालांकि ऐसा कहना सत्य का गला घोंटना है। यह बिल्कुल गलत है कि इस्लाम तलवार के बल से फैला। तलवार के बल से कोई धर्म नहीं फैलता और कुछ दिनों के लिये फैल भी जाए तो चिरंजीवी नहीं हो सकता। भारत में इस्लाम फैलने का कारण ऊँची जाति वाले हिंदुओं का नीची जातियों पर अत्याचार था। बौद्धों ने ऊँच-नीच के भेद को मिटाकर नींचो के उद्धार का प्रयास किया और इसमें उन्हें अच्छी सफलता मिली। लेकिन जब हिंदू धर्म ने फिर जोर पकड़ातो नीची जातियों पर फिर वही पुराना अत्याचार शुरू हुआबल्कि और जोरों के साथ। ऊँचो नें नीचे से उनके विद्रोह का बदला लेने की ठानी। नींचों ने बौद्ध काल में अपना आत्मसम्मान पा लिया था। वह उच्च वर्गीय हिंदुओं से बराबरी करने लगे थे। उस बराबरी का मज़ा चखने के बाद अब उन्हें अपने को नींच समझना दुस्सह्य हो गया। यही खींचतान हो रही थी कि इस्लाम ने नये सिद्धांतों के साथ पदार्पण किया। वहाँ ऊँच-नीच का भेद न था। छोटे-बड़े,ऊँच-नींच की क़ैद न थी। इस्लाम की दीक्षा लेते ही मनुष्य की सारी अशुद्धियां,सारी अयोग्यताएं,मानों धुल जाती थी। वह मस्जिद में इमाम के पीछे खड़ा होकर नमाज पढ़ सकता था,बड़े से बड़े सय्यद ज़ादे के साथ एक दस्तरख्वान पर बैठकर भोजन कर सकता था। यहाँ तक कि उच्च वर्गीय हिंदुओं की दृष्टि में भी उनका सम्मान बढ़ जाता था। हिंदू अछूत से हाथ नहीं मिला सकता,पर मुसलमानों के साथ मिलने-जुलने में उसे कोई बाधा नहीं होती। वहाँ कोई नहीं पूछता कि अमुक पुरुष कैसा,किस जाति का मुसलमान है। वहाँ तो सभी मुसलमान हैं। इसलिए नींचों ने इस नए धर्म का बड़े हर्ष से स्वागत किया और गाँव के गाँव मुसलमान हो गये। जहाँ वर्गीय हिंदुओं का अत्याचार जितना ही ज्यादा था वहाँ यह विरोधाग्नि भी उतनी ही प्रचंड थीऔर वहीं इस्लाम की तबलीग भी खूब हुई। कश्मीर,आसाम,पूर्वि बंगाल आदि इसके उदाहरण हैं। आज भी नीची जातियों में गाजी मियां और ताजियों की पूजा बड़ी श्रद्धा के साथ की जाती है। उनकी दृष्टि में इस्लाम विजय शत्रु नहीं,उद्धारक था।...तो इस्लाम तलवार के बल से नहीं,बल्कि अपने धर्म तत्वों की व्यापकता के बल से फैला। इसलिए फैला कि उसके यहाँ मनुष्यता के अधिकार समान हैं।"[14]

प्रेमचंद ने इस सत्य की ओर भी लोगों का ध्यान आकर्षित किया कि मुख्य रूप से नीची-जाति के अछूतों ने ही अधिकतर इस्लाम धर्म इसलिए स्वीकार कियाक्योंकि उन्हें अत्याचार और शोषण का शिकार बनाया जाता था। उच्च-जाति के लोगों ने उन पर जो शोषण और अधिकारों से वंचित कर रखा था,इसका समूचा इतिहास दलित साहित्य के पृष्ठों में मौजूद है। स्वामी विवेकानंद जी नें भी इस सत्य का उद्घाटन करते हुए एक बार कहा था,"भारत के गरीबों में से ज्यादा मुसलमान क्यों है?यह कहना बकवास है कि उन्होंने तलवार की नोक पर धर्म बदला। वास्तव में यह जमीदारों और पुजारियों के अत्याचार से छुटकारा पाने के लिए था।....बाद में सूफी संतों के प्रभाव से भारी संख्या में धर्म परिवर्तन हुआ। यह लोग इस्लाम की मानवतावादी पहलुओं को उजागर करने के लिए स्थानीय रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों का प्रयोग करते थे।.....मुसलमान बादशाहों के आक्रमण से बहुत पहले शूद्रों को अछूत माना जाता था और वे समाज के सबसे अधिक दलित और शोषित वर्ग थे। वैदिकोत्तर से लेकर गुप्त युग तक जाति व्यवस्था तथा छुआछूत बहुत प्रचंड होती गई। मुस्लिम शासन के आने के बाद भक्ति जैसे आंदोलनों ने प्रत्यक्ष रूप से और सूफी आंदोलनों नें अप्रत्यक्ष रूप से जाति दमन और छुआछूत की तीव्रता को कम किया"।[15]

'इसलाम का विष वृक्ष'नाम से चतुरसेन शास्त्री ने एक पुस्तक की रचना की थी। इस पुस्तक में उन्होंने कुरान की गलत व्याख्या करके और अपने मत को सत्य घोषित करने के लिए इरविन,एलफिंस्टन,बर्नियर और मनूची जैसे यूरोपियन लेखकों के उद्धरण के माध्यम से इस्लाम धर्म को घोर अमानवीयतावादी घोषित करने का प्रयास किया था। 17 जुलाई 1933 को जैनेंद्र को लिखे गए एक पत्र में प्रेमचंद ने चतुर्सेन शास्त्री की निंदा करते हुए लिखा,"भगवती वाजपेयी की कहानी बहुत सुंदर थी और इन चतुर्सेन को क्या हो गया है कि 'इसलाम का विष वृक्ष,लिख डाला। इसकी एक आलोचना तुम लिखो और वह पुस्तक मेरे पास भेजो। मैंने चतुर्वेदी जी से प्रस्ताव मांगी है। इस कम्युनल प्रोपेगंडे का जोरों से मुक़ाबला करना होगा और यह ऋषभ भले आदमी भी इन चालों से धन कमाना चाहते हैं।"[16] चतुरसेन शास्त्री प्रेमचंद के अच्छे मित्रों में से थे लेकिन फिर भी देश में सांप्रदायिकता को बढ़ावा देना उन्हें सहनीय नहीं था। एक अच्छे पत्रकार की भांति उन्होंने ऐसे लेखकों और उनकी सांप्रदायिक रचनाओं की घोर निंदा की। वह लिखते हैं–

"अभी हाल ही में इस नाम की एक पुस्तक साहित्य–मण्डल देहली ने प्रकाशित की है। इसके लेखक हैं, श्री चतुरसेन शास्त्री। शास्त्री जी यशस्वी लेखक हैं, उनकी शैली में ओज,आकर्षण है,तेज है,पर दुर्भाग्यवश

वह कभी–कभी इन गुणों का दुरुपयोग किया करते हैं। थोड़े से धन और थोड़े से यश के लोभ से ऐसी रचनाएं कर डालते हैं, जिनसे सनसनी के साथ देश में सांप्रदायिकता द्वेष को उत्तेजित करने की मनोवृत्ति साफ झलकती है। ऐसी जहरीली पुस्तकें बिकती ज़्यादा हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। मुसलमानों ने हिंदुओं पर जो अत्याचार किए,उसका विषद और एकांगी विस्तार दिखाकर सांप्रदायिक मनोवृत्ति वाली हिंदू जनता में मुसलमानों के प्रति द्वेष को भड़काना एक यशस्वी और ज़िम्मेदार लेखक को मर्यादा के अनुकूल है?दोष सभी धर्मो में निकाले जा सकते हैं। क्या हिंदू धर्म दोषों से खाली है?अपने–अपने समय में प्रभुता पाकर अत्याचार भी सभी जातियों ने किए हैं, लेकिन उन गई बीती बातों को कीने की तरह पालना और उनका प्रचार करके जनता में द्वेष फैलाना,राष्ट्र को सर्वनाश की ओर ले जाना है।... हम नहीं समझते कि इस तरह की लचर,बेबुनियाद, धोखे में डालने वाली बातों के प्रचार का इसके सिवा और क्या उद्देश्य है कि हिंदुओं में इस्लाम और मुसलमानों के प्रति घृणा और द्वेष पैदा किया जाय। ऐसी मनोवृत्ति वालों से ईश्वर इस देश की रक्षा करे !..... श्री चतुरसेन शास्त्री जी हमारे मित्र हैं वह विद्वान हैम,मनस्वी हैं,उदार हैं। हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि ऐसी जटिल और दुरूह भरी रचनाएं लिखकर अपनी प्रतिभा को और हिंदी भाषा को कलंकित न करें और राष्ट्र में जो द्रोह और द्वेष पहले से ही फैला हुआ है,उस बारूद में आग न लगावें।"[17] देश में बढ़ रही सांप्रदायिक स्थिति को देखते हुए गांधी जी ने भी समय–समय पर इस्लाम और कुरान के संबंध में अपने मत को निम्नलिखित शब्दों में प्रकट किया थाजिसका अनुकरण प्रेमचंद ने अपनी पत्रकारिता में किया है–

1. “मैं इस्लाम को भी ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म और हिंदू धर्म की तरह शांति का धर्म मानता हूं।”[18]
2. “कुरान में धर्म–परिवर्तन के लिए बल का प्रयोग करने की कोई बात कहीं नहीं कही गई है। पवित्र किताब में तो स्पष्टतम भाषा में कहा गया है कि “धर्म में दबाव के लिए कोई स्थान नहीं है।” पैगंबर का सारा जीवन ही धर्म में कोई दबाव डालने का खण्डन है। मेरी जानकारी में किसी मुसलमान ने जबरन मुसलमान बनाए जाने को उचित नहीं ठहराया है।”[19]

3. “मैंने कुरान का एक से अधिक बार पारायण किया है। मेरा धर्म मुझे सिखाता है ,बल्कि बाध्य करता है कि मैं विश्व के सभी धर्मों की अच्छी बातों को आत्मसात करूं।”[20]

4. “मैं निश्चय ही इस्लाम को ईश्वर–प्रेरित धर्म मानता हूं और इसीलिए पवित्र कुरान को प्रेरित पुस्तक तथा हज़रत मुहम्मद को पैगंबरों में से एक मानता हूं।”[21]

5. “मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि कुरान के उपदेश बुनियादी तौर पर अहिंसा के पक्ष में हैं। कुरान में कहा गया है कि हिंसा से अहिंसा बेहतर है। अहिंसा को कर्तव्य बताया गया है, हिंसा की इजाज़त जरूरत पड़ने पर ही दी गई है।”[22]

तत्कालीन समय में कुछ ऐसे भ्रष्ट व्यक्तियों की कमी न थी जो अपनी स्वार्थपूर्ति और उदर पोषण के लिए अपने धर्म को भी बेच डालते थे। प्रेमचंद ने तत्कालीन समाज में हुई एक आश्चर्यजनक घटना का वर्णन अपने एक लेख 'स्वार्थांधता की पराकाष्ठा'में कियाजिसमें उन्होंने दिखाया कि हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य को बनाए रखने के लिए किस तरह एक मुस्लिम गुंडा कुरान शरीफ के एक वरक़ को फाड़ कर और उसमें भिष्टा भरकर एक मस्जिद में फेंकने की कोशिश करता है लेकिन वह रंगे हाथों पकड़ा जाता है। उस पाखण्डी मुसलमान के इस अधार्मिक रवैया से मुसलमानों के हृदय में हिंदू धर्म और समाज के प्रति जो प्रतिक्रिया प्रस्फुटित होती उसे आसानी से समझा जा सकता है। प्रेमचंद लिखते हैं, “मुसलमान गुंडे ने क्यों यह नीचता की,इसका कारण सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इससे पता चलता है कि धार्मिक आघात पहुंचाकर किस भांति हिंदू–मुस्लिम विरोध की आग भड़काई जाती है। यह तो कल्पना ही न की जा सकती थी कि किसी मुसलमान ने यह हरकत की होगी,हिंदू ही पर शुबहा होता और हिंदुओं से बदला लेने की चेष्टा की जाती। हम स्वर्थांध होकर इतने नीचे गिर सकते हैं।”[23] इस प्रकार प्रेमचंद तत्कालीन समाज को मानवता के सूत्र में बांधने का प्रयास अपने विभिन्न लेखों और संपादकीयों के माध्यम से निरंतर कर रहे थे।

शुद्धि आन्दोलन और गोरक्षा के नाम पर देश भर में सांप्रदायिक तनाव बढ़ने लगे थे। इसी तनाव के परिणाम स्वरूप 24 मार्च, 1931 ई० को कानपुर में हिंदू-मुस्लिम दंगे भड़क उठे जिस पर कई दिनों तक काबू नहीं पाया जा सका था। इसमें प्रख्यात स्वतंत्रता सेनानी गणेश शंकर विद्यार्थी भी मारे गये थे। इसके कुछ दिन पहले ही बनारस में भी दंगा हो चुका था। तब कांग्रेस ने इन दंगों और दोनों समुदायों में बढ़ रही कड़वाहट की जांच के लिए अपने कराची सत्र में एक छह सदस्यीय समिति बनाई थी। इसके सदस्य थे भगवान दास (अध्यक्ष), सुंदरलाल, पुरूषोत्तम दास टंडन, मंज़र अली सोख़्ता, अब्दुल लतीफ़ बिजनौरी

और मौलाना जफ़रुल मुल्क। इस कमेटी ने बड़ी ईमानदारी और लगन से अपने कर्तव्य का पालन करते हुए पांच सौ पृष्ठ की एक रिपोर्ट पेश की थी। उस रिपोर्ट के प्रकाशित होने के बाद हज़रत मुहम्मद साहब की जयंती मनाई गई। हिंदू-मुस्लिम एकता को स्थापित करने के लिए जगह–जगह धार्मिक सम्मेलनों की आयोजना की जाने लगी। प्रेमचंद उन सम्मेलनों का खुलकर प्रोत्साहन कर रहे थे और इन सम्मेलनों को भारतीय एकता को सुदृढ़ करने का एक मात्र साधन घोषित कर रहे थे। 17 जुलाई 1933 ई० को 'जागरण' में प्रकाशित 'हजरत मुहम्मद की पुण्य-स्मृति' नामक लेख में मुहम्मद साहब के संबंध में फैलाये जा रहे मिथ्या आरोपों और धारणाओं का खंडन करते हुए लिखा–

"यह आमतौर पर कहा जाता है कि इस्लाम धर्म तलवार के ज़ोर से फैला और यह कि हज़रत मुहम्मद ने अपने संप्रदाय को आज्ञा दी है कि काफिरों को कत्ल करना ही स्वर्ग की कुंजी हैपर पंडित जी ने बताया कि यह बातें कितनी गलत और द्वेष पैदा करने वाली है। हज़रत मुहम्मद ने कभी किसी पर हमला नहीं किया। उनके जीवन में ऐसी एक मिसाल भी नहीं मिलती, कि उन्होंने प्रचार के लिए या विजय के लिए किसी पर फौजकशी की हो। जब भी उन्होंने तलवार उठायी तो शत्रुओं से अपनी रक्षा करने के लिए और वह भी उस हालत में जब और किसी तरह शत्रु अपने अन्याय से बाज न आया। कत्ल करने की जगह उन्होंने सदैव क्षमा की। यह कहा जा सकता है कि क्षमा उनके जीवन का मुख्य तत्व था। मक्का वालों के जुल्म से तंग आकर वे मदीना चले गए थे। जब तेरह वर्ष बाद उन्होंने फिर मक्का पर विजय पाई तो सारा मक्का भय से कांप रहा था कि न जाने कितनी बड़ी आफत आने वाली है, पर हज़रत ने सबको क्षमा कर दिया,हालांकि वे चाहते तो मक्का में कत्ल ए आम करा सकते थे।... उन्होंने प्रजा के धन को हमेशा अपने परिवार के लिए त्याज्य समझा। वे अपने हाथों अपने कपड़े सीते थे,अपने जूते गांठते थे,और कभी–कभी अभाव के कारण यहां तक नौबत आ जाती थी कि आपको पेट में पत्थर बांध लेना पड़ता था,जिसमे क्षुधा के कारण पेट में दर्द न होने लगे। इसी संबंध में हज़रत मुहम्मद की ग्यारह स्त्रियों का जिक्र किया जाता है....और भोले–भाले हिंदू अज्ञान के कारण उन लोगों के भुलावे में आकरजिनकी रोटियां सांप्रदायिक वैमनस्य पर चलती हैं, इसी महान अनर्थ को सत्य मान लेते हैं।....ऐसे महात्यागी के विषय में,जिसने पच्चीस वर्ष की अवस्था में पैंतालीस वर्ष की अधेड़ स्त्री से विवाह किया और पच्चीस वर्ष तक उसके साथ सच्चे पत्निव्रत का पालन किया,अन्याय और धार्मिक द्वेष की प्रकाष्टा है। पचास वर्ष की अवस्था के बाद अवश्य हज़रत ने कई शादियां कीं,पर हरेक शादी किसी न किसी धार्मिक या सामाजिक

या राजनीतिक कर्तव्य के अधीन हुई। उस समय जब दो कबीलों में झगड़ा हो जाता था,तो संधि के समय जीते हुए दल को हारे हुए दल की कन्या से विवाह करके संधि की मजबूती का विश्वास दिलाना पड़ता था।...एक महिला के विषय में यही बात हुई। जब हारे हुए दल ने अपनी कन्या से विवाह का प्रस्ताव किया तो हज़रत ने अपने सहाबा में हरेक से उस कन्या के साथ विवाह करने का आग्रह किया,पर जब कन्या के कुरूप होने के कारण कोई राजी न हुआ,तो मजबूर होकर हज़रत ने उस कन्या को खुद अपना महल बना लिया। क्या यह भोग लिप्सा है ? यह उस ज़माने की एक प्रथा का पालन है और कुछ नहीं।....यह भी ध्यान रखने की बात है कि हज़रत मुहम्मद ने कहीं भी नए धर्म के प्रवर्तन का दावा नहीं किया। उन्होंने बार–बार कहा है कि मैं प्राचीन नबियों के धर्म को ही पुनर्जीवित करने आया हूं। उन्होंने बार–बार कहा है कि हरेक धर्म का सम्मान करो, क्योंकि सब धर्मों की तह में केवल एक सच्चाई है। किसी धर्म की उन्होंने निंदा नहीं की। जब हज़रत एक राज्य के अधिकारी हो गए और वह तलवार के ज़ोर से जनता को मुसलमान बना सकते थे,तब भी उन्होंने हरेक धर्म को अपने मतानुसार उपासना करने की स्वाधीनता दे दी थी। यहां तक कि मूर्ति–पूजकों पर भी कोई बंधन न था और हरेक धर्म के पवित्र स्थानों की रक्षा करना मुस्लिम सरकार अपना कर्तव्य समझती थी।...यह है उस ऋषि की जीवन कथा,जिसके नाम पर आज आधी दुनियां सिर झुकाती है। उसके त्याग की कथा अदभुत है।...उसके प्रति हमे श्रद्धा और प्रेम होना चाहिए। कितने खेद की बात है कि ऐसे महापुरुष पर झूठे आक्षेप लगाकर हम द्वेष बढ़ाते हैं। यह है उस व्याख्यान का सारांश,जो पं० सुंदरलाल जी ने उस दिन इस इस्लामी प्लेटफार्म से दिया था। हमारा ख्याल है कि ऐसे सम्मेलनों और जलसों से,जिसमें हमारे पूज्यों के विषय में आदर और प्रेम के भाव प्रदर्शित किए जाएं,इससे दोनों जातियों में प्रेम और सहिष्णुता की स्पिरिट पैदा हो सकती है और उसका यही एक मार्ग है। इस वक़्त हमारे सामने इसी धर्म के द्वेष को मिटाना सबसे बड़ा काम है।"[24]तत्कालीन समाज की साम्प्रदायिक स्थिति को देखते हुए ही उन्होंने यह लेख लिखा था। आपसी वैमनस्य को समाप्त करने के लिये प्रेमचंद ऐसे सम्मेलनों को हिंदू–मुस्लिम एकता का एकमात्र उपचार समझ रहे थे। इन्हीं दिनों आचार्य चतुर्सेन शास्त्री ने 'इस्लाम का विषवृक्ष'नामक पुस्तक लिखी थी जिसकी प्रतिक्रिया में प्रेमचंद जून 1933 ई० में उस पुस्तक की आलोचना की थी।

सांप्रदायिक संगठनों के कारण देश में चारों तरफ खौफ और डर का वातावरण पैदा हो चुका था। इन सांप्रदायिक शक्तियों ने सभी धर्मों के प्रति एक–दूसरे के अनुयायियों को आतंकित कर रखा था। प्रेमचंद

ने देश की अखंडता और प्रभुता के लिए भी हिंदू–मुस्लिम एकता को इसी कारण आवश्यक समझा था। उन्होंने तत्कालीन सांप्रदायिक संगठनों को देखकर यह महसूस कर लिया था कि भारत की सांप्रदायिक समस्या स्वाधीनता के बाद भी अपना असर दिखाती रहेगी। यही कारण था कि प्रेमचंद जहां एक ओर दोनों धर्मो के सांप्रदायिक नेताओं को आपसी भाई–चारा की शिक्षा दे रहे थे वहीं दूसरी ओर भारतीय इतिहास की विकृत और सांप्रदायिक व्याख्या को भारत वर्ष की शिक्षा–प्रणाली से निकालने की अपील कर रहे थे। प्रेमचंद हिंदू–मुस्लिम एकता के समर्थक थे। देश में सुख–शांति का वातावरण पैदा करने और देश में निरंतर बढ़ रही हिंसा को रोकने के लिए प्रेमचंद हिंदू–मुस्लिम एकता को ज़रूरी समझते थे। गांधी जी भी हिंदू–मुस्लिम एकता को ही अहिंसा के सिद्धांत की कसौटी और पहली सीढ़ी मानते थे। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए प्रेमचंद द्वारा किये गए इन प्रयासों को देखते हुये बी.टी.रणदिवे लिखते हैं,"जिस समय हिंदू-मुस्लिम दंगों तथा उन में हिंदुओं की बुरी स्थिति की रोज दोहराई जा रही कहानियों से उत्तेजित होकर गांधी तक नें एक बार यह कह डाला था कि औसत हिंदू कायर होता है,औसत मुसलमान गुंडा होता है–ऐसी परिस्थिति में इस उल्लेखनीय लेखक नें अप्रतिद्वंदी वाकपटुता और व्यग्रता के साथ हिंदू मुस्लिम-एकता के हितों की लगातार पैरवी की। उन्होंने इसके तमाम विरोधियों विशेषकर हिंदू संप्रदायवादियों से लड़ाई की। उन्होंने हिंदुओं के समक्ष मुसलमानों के दृष्टिकोण को पेश करने की कोशिश की तथा अल्पसंख्यकों के संदेह को दूर करने के लिए उन्होंने मुसलमानों के दृष्टिकोण से खुद को सहमत बताया। ऐसे समय में जब हिंदू-मुस्लिम एकता के नारे के साथ कांग्रेस रक्षात्मक स्थिति में चली गई थी क्योंकि लगातार दंगे हो रहे थे जिनके शिकार मुख्य रूप से हिंदू बना करते थे तथा सरकारी तरफदारी बिल्कुल नंगी होकर सामने आई थी,इन बड़े नेताओं की आलोचना करने के लिए वास्तव में दृढ़ विश्वास और अत्याधिक साहस की जरूरत थी। प्रेमचंद ने इस साहस का परिचय दिया।"[25]

प्रेमचंद एक सच्चे देश–भक्त की तरह ब्रिटिश भारत की सेवा कर रहे थे। देश को स्वतंत्र कराना और देश की शोषित और पीड़ित जनता का उद्धार करना यही उनके जीवन का मुख्य ध्येय था। इसी उद्देश्य हेतु उन्होंने पत्रकारिता का सहारा लिया और अपना सर्वस्व उसी के लिए न्योछावर कर दिया। प्रेमचंद के इसी योगदान को देखते हुए रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद और उनका युग'में लिखते हैं,"प्रेमचंद हिंदुस्तानी क़ौम की भीतरी एकता कायम करने वाली एक ज़बरदस्त ताकत थे। इस क़ौम को तोड़ने वालों के वह सबसे बड़े दुश्मन थे। वह जाति को पतन के गड्ढे में ढकेलने वाले साहित्य के कटु

समालोचक थे,वह हिंदुस्तानी जनता के लिए अलंबरदार थे। प्रेमचंद निकट भविष्य में एक नए हिंदुस्तान की एकता और जन संस्कृति के महान प्रेरणादायक स्त्रोत बनने वाले हैं।"[26] हिंदू–मुस्लिम एकता को स्थापित करने के लिए प्रेमचंद द्वारा किए गए प्रयासों और सुझावों को उनकी पत्रकारिता में देखा जा सकता।

संदर्भ :

1. प्रेमचंद संपादक,हिंदी का अकेला साहित्यिक साप्ताहिक पत्र 'जागरण', सरस्वती प्रेस,काशी,26 जून 1933ई०, 'सुदिन अथवा कुदिन '('विविध प्रसंग' (भाग 2) में संकलित,पृष्ठ संख्या :176.
2. रजनी पामदत्त ,"आज का भारत", भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद द्वारा प्रकाशित ,प्रथम संस्करण :1997 ,शीर्षक' –भारत में ब्रिटिश शासन का पुराना आधार', पृष्ठ संख्या :463
3. राम पुनियानी' ,साम्प्रदयिक राजनीतिक :तथ्य एवं मिथक,'अनुवाद -रामकिशन गुप्ता ,वाणी प्रकाशन-दारियागंज ,नई दिल्ली ,प्रथम संस्करण 2005 :, पृष्ठ संख्या : 40.
4. प्रेमचंद संपा .'हंस', नवंबर 1931ई०, 'हिंदू–मुस्लिम एकता', प्रकाशक :'दि हंस 'लिमिटेड, सरस्वती प्रेस,बनारस कैंट, पृष्ठ संख्या :63 ,'हंसवाणी',)'विविध प्रसंग' (भाग 2) में संकलित, पृष्ठ संख्या :376.((वर्तमान में 'हंस' (1900–1936) के विभिन्न अंक तीन मूर्ति भवन ,(दिल्ली) के नेहरू स्मारक पुस्तकालय में सूक्ष्म संचिका (microfiche format) के रूप में संरक्षित है।).
5. विपिन चंद्र ,मृदुला मुखर्जी ,आदित्यमुखर्जी ,क .न .पाणिकर ,सुचेता महाजन',भारत का स्वतंत्रता संघर्ष ,'हिंदी माध्यमकार्यान्वयन निदेशालय ,दिल्ली विश्वविद्यालय ,शीर्षक -'इतिहास का साम्प्रदायिक इस्तेमाल ,'पृष्ठ संख्या :397.
6. प्रेमचंद (संपादक), 'माधुरी '(मासिक पत्रिका), 1जनवरी 1925ई०, 'कर्बला', प्रकाशक :नवल किशोर प्रेस ,हज़रतगंज लखनऊ ,अमीनाबाद चौक).'विविध प्रसंग '(भाग दो), में संकलित ,पृष्ठ संख्या :357
7. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास',रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशक : 'नागरी प्रचारिणी सभा', वाराणसी/नई दिल्ली संस्करण तृतीय, सगुण धारा : कृष्ण भक्ति शाखा, पृष्ठ संख्या : 105.
8. वही,पृ.सं:110.
9. वही,पृ.सं:111.
10. वही,पृ.सं:111.
11. वही,पृ.सं:120.
12. प्रेमचंद (सहायक संपादक), 'ज़माना' ,नवंबर 1931ई०, 'हिंदू–मुस्लिम एकता', दफ्तर ज़माना, चौक कानपुर,'विविध प्रसंग ',भाग 2में संकलित,पृष्ठ संख्या :377.
13. प्रेमचंद (संपादक), 'जागरण', सरस्वती प्रेस ,काशी ,5 दिसंबर 1932ई०, 'समझौता या हार', 'विविध प्रसंग '(भाग 2) में संकलित ,पृष्ठ संख्या :402.

14. प्रेमचंद (संपा.)'हंस', नवंबर 1931ई०, 'हिंदू–मुस्लिम एकता', पृष्ठ संख्या :63 ,'हंसवाणी', वही , पृष्ठ संख्या :377.
15. राम पुनियानी,अनुवाद-रामकिशन गुप्ता, 'साम्प्रदयिक राजनीतिक : तथ्य एवं मिथक' ,वाणी प्रकाशन-दारियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2005, पृष्ठ संख्या : 44.
16. अमृत राय ,"चिट्ठी पत्री", भाग 2, हंस प्रकाशन इलाहाबाद ,प्रथम संस्करण :1962 ,नवीन संस्करण :1978 ,पृष्ठ संख्या :32.
17. प्रेमचंद (संपादक), 'जागरण', सरस्वती प्रेस ,काशी ,24 जुलाई 1933ई०, 'इस्लाम का विष–वृक्ष ' ("विविध प्रसंग)भाग दोमें संकलित ,पृष्ठ संख्या :414
18. संकलन एवं संपादन–आर .के .प्रभु और यू .आर .राव ,प्राक्कथन–आचार्य विनोबा भावे तथा डॉ . सर्वपल्ली राधाकृष्णन ,अनुवाद–भवानीदत्त पांड्या ,"महात्मा गांधी की विचार", नेशनल बुक ट्रस्ट ,इंडिया ,पृष्ठ संख्या :107 यंग ,21–3–1927 ,पृष्ठ संख्या :21.
19. वही ,पृष्ठ संख्या...:यंग ,29–9–1921 ,पृष्ठ संख्या :307
20. वही ,पृष्ठ संख्या..हरि ,28–10–1939 ,पृष्ठ संख्या317
21. वही ,पृष्ठ संख्या..हरि ,13–7–1940 ,पृष्ठ संख्या :207
22. वही ,पृष्ठ संख्या :वही ,पृष्ठ संख्या :193
23. प्रेमचंद (संपा.), 'हंस', अप्रैल 1931, 'स्वर्थांधता की पराकाष्ठा', पृष्ठ संख्या: 64, 'हंसवाणी','विविध प्रसंग' (भाग 2) में संकलित, पृष्ठ संख्या: 371
24. प्रेमचंद (संपा.), 'जागरण '17 जुलाई 1933, 'हजरत मुहम्मद की पुण्य-स्मृति ,'वही ,पृष्ठ संख्या : 411–412.
25. शिवकुमार मिश्र ,"प्रेमचंद विरासत का सवाल", 'पीपुल्स लिटरेसी ,मटिया महल दिल्ली ,प्रथम संस्करण :1981 ,शीर्षक -'साम्प्रदायिक सौहार्द का सवाल ,'पृष्ठ संख्या :51.
26. रामविलास शर्मा, "प्रेमचंद और उनका युग", राजकमल प्रकाशन दिल्ली 1967, पृष्ठ संख्या : 8